ओ३म्

मानव-निर्माण

"मनुर्भव, जनय दैव्यं जनम्" —वेद

"स्वयं मानव बन और मानवता का निर्माण कर"
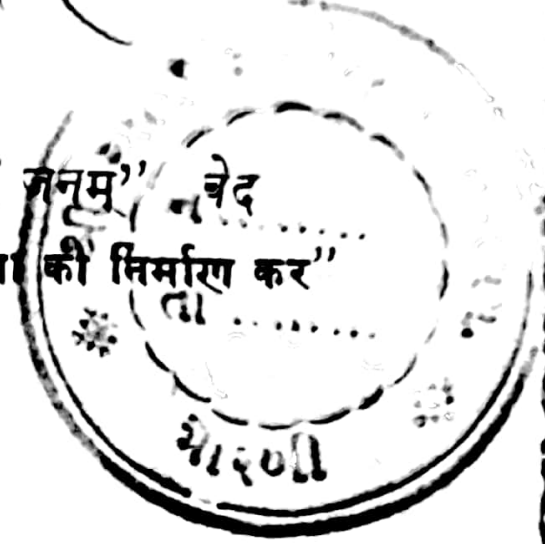
लेखक:—

श्री पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण

पुरोहित

आर्यसमाज करौल बाग,

देहली

प्रकाशक

श्री देवदत्त आर्य

मन्त्री आर्यसमाज करौल बाग

देहली

प्रथमा वृत्ति २०००

मूल्य =) १२ नये पैसे

दो शब्द

वैदिक संस्कृति का विकास ही इस लिए हुआ कि मानव सच्चा मानव बने, अपने आप को पहचाने। सरस्वती के वरद पुत्र महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इसी वैदिक संस्कृति का प्रचार किया। तत्पश्चात् आर्य समाज भी निरन्तर इसी के प्रसार में संलग्न तथा प्रयत्नशील रहा है और रहेगा।

आर्यसमाज करौल बाग भी महर्षि के आदेश पालन में प्रयत्नशील है। अपने पूज्य पुरोहित, वैदिक विद्वान् तथा बहुश्रुत श्री पं० हरिदेव जी सिद्धान्त भूषण के सहयोग से इस समाज ने अब तक प्रचारमाला के तीन पुष्प (१) 'वैदिक धर्म ही क्यों?' (२) 'सूर्य ग्रहण और सच्चे तीर्थ' (३) 'आर्य और दस्यु' जनता की सेवा में प्रस्तुत किए हैं, जिन की जनता ने तथा विद्वानों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। आज इस समाज के वार्षिकोत्सव के शुभावसर पर यह चतुर्थ-पुष्प पाठकों के सम्मुख है। पाठक देखें तथा समझें कि मानव निर्माण कितना आवश्यक तथा अनिवार्य है जिसके बिना शेष निर्माण अधूरे हैं, निष्फल हैं।

निवेदक

श्रीमान् निरञ्जननाथ
प्रधान

देवदत्त आर्य
मन्त्री

मानव--निर्माण

इस समय देश के नेता देश का नव-निर्माण करने में लगे हैं। कहीं भाकड़ा और नांगल जैसे बड़े-बड़े डैम बन रहे हैं, कहीं बड़ी-बड़ी लम्बी चौड़ी, सड़कें तैयार हो रही हैं, कहीं मोटरों और साईकलों के कारखाने खोले जा रहे हैं। कहीं रेलों और वायुयानों का विस्तार हो रहा है। कहने का तात्पर्य यह है कि देश के निर्माण एवं उत्थान के सब भौतिक उपाय काम में लाए जा रहे हैं, यह बड़ी अच्छी बात है, किंतु इससे भी अधिक गम्भीर और विचारणीय बात यह है कि जिस मानव के लिए यह सब कुछ किया जा रहा है उसकी क्या अवस्था है। उसका सुधार हो रहा है या विनाश। यह सब बाह्य साधन सब मनुष्य को सुखी बनाने के लिए हैं, पर यदि मानव मानव न बना तो यह सब होते हुए भी संसार में दुख ही बढ़ेगा सुख नहीं। अतः जब हम गम्भीर दृष्टि से विचारते हैं तो प्रतीत होता है कि देश की सब वस्तुओं में विकास हो रहा है किंतु जिस के लिए यह सब वस्तुएं हैं, उसका शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक, सामाजिक सब प्रकार से ह्रास ही रहा है। हमारा यह विश्वास है कि जब तक मानव का उत्थान

नहीं होगा देश का कल्याण नहीं होगा अथवा जब तक मानव का सुधार नहीं होगा देश का उद्धार एवं बेड़ा पार नहीं होगा।

मनुष्य के लक्षण—

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि सच्चा मानव या सुधरा हुआ मानव कौन है? स्मृतिकार कहते हैं:—

शौच मंगलानायासा अनुसूयाऽस्पृहा दमाः।
लक्षणानि च विप्रस्य तथा दानं दयापि च॥

(१) शौच—का अर्थ है पवित्रता, यह चार प्रकार की है। जैसे कहा गया है:—

द्रव्य शौचं मनः शौचं वाचिकं कायिकं तथा
शौच चतुर्विधं प्रोक्तमृषिभिस्तत्त्व दर्शिभिः।

(क) हम मेहनत से कमायें, ईमानदारी से कमायें उसमें से दसवां भाग धर्म के कामों में व्यय करें यह द्रव्य की धन की पवित्रता है छल से कपट से, धोखे से, बेईमानी से, चोरी से कमाया हुआ हमारा धन न हो। मनु जी ने भी कहा:—

"सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं विशिष्यते"

अर्थात् सब पवित्रताओं में धन की पवित्रता ही उत्तम है।

(ख) मन की पवित्रता:—दूसरे के धन का लोभ न करना। दूसरों का बुरा या अनिष्ट न सोचना, आत्मा परमात्मा, परलोक पर विश्वास रखकर शुभ कर्म करना

मन की पवित्रता है ।

"लोभ, मोह, अभिमान, क्रोध, चारों दोष यह मन के सोध" और इसके विपरीत, लोभ का बढ़ना, मोह में फंसना अभिमान का होना, बिना कारण क्रोध करना यह मन का मैल या अपवित्रता है ।

(ग) वाणी की पवित्रता :—सख्त और कठोर वाणी न बोलना, असत्य न बोलना, चुगली न करना, व्यर्थ न बोलना अर्थात् बेहूदा बकवास न करना वाणी की पवित्रता है । इसके विपरीत "निन्दा झूठ, कटु बकवाद, चारों दोष वाणी के साध" किसी की निंदा करना झूठ बोलना, बकवाद करना और कड़वा बोलना वाणी की अपवित्रता है ।

(घ) शरीर की पवित्रता :—मालिक की आज्ञा बिना किसी वस्तु को ग्रहण न करना, बिना अपराध किसी जीव की हिंसा न करना, या किसी को दुख न देना, पराई औरत से संग न करना, अर्थात्

परनारी पैनी छुरी मत कोई लाओ अंग ।
रावण के दस सिर गए परनारी के संग ॥

ऐसा समझकर सर्वथा दूर रहना शरीर की पवित्रता है ।
और चोरी, हिंसा और व्यभिचार ।
काया के त्रय दोष विचार ॥

के अनुसार चोरी करना, किसी की हत्या करना, मांस आदि खाना और व्यभिचार करना शरीर की अपवित्रता

है। अतः धन की पवित्रता मन की पवित्रता, वाणी की पवित्रता, और शरीर की पवित्रता, चारों प्रकार की पवित्रता जिस में है वह मनुष्य है।

(२) मंगल :—नेकी को धारण करना और बदी से सदा दूर रहना मंगल कहलाता है। कहा भी है—

नेकी बदी दो गाड़ियां रहतीं सदा तैयार।
मूर्ख चढ़ते बदी पर नेकी पर होशयार॥

भर्तृहरिजी ने एक स्थान पर लिखा है कि जो अपनी हानि करके भी दूसरों का भला सोचते वा करते हैं वह देवता हैं, जो अपना भी भला करते हैं और दूसरों का भी भला करते हैं वह मनुष्य हैं और जो अपने स्वार्थ के लिए दूसरों का नुकसान या हानि करने से भी नहीं चूकते वह राक्षस हैं तात्पर्य यह है कि जो स्वार्थ को त्याग कर परमार्थ और परोपकार में अपना जीवन व्यतीत करते हैं वह ही सच्चे मनुष्य हैं।

(३) अनायास :—अपने आपको पीड़ित वा दुखी न करना अनायास कहलाता है। स्मृतिकार कहते हैं—

शरीर पीड्यते येन शुभेन ह्यशुभेन वा।
अत्यन्तं तन्न कुर्वीत अनायासः स उच्यते॥

अर्थात् स्मृतिकार कहते हैं कि चाहे परोपकार का भी कार्य क्यों न हो, उसको सिद्ध करने के लिए भी अपने आप को दुखी न करे। क्योंकि ऐसा करने से उसका स्वास्थ्य

बिगड़ जायगा और आयु भी कम हो जायगी। स्वास्थ्य का बिगाड़ना आयु का घटाना पाप है। और भलाई वा परोपकार के कार्य भी वही कर सकता है जो दीर्घजीवी होता है। इसलिए जो किसी कार्य को सिद्ध करने के लिए अपने आपको हमेशा दुखी नहीं बनाए रखता, वही सच्चा मानव है। कई लोग दिन-रात समय असमय कार्य करते हुए रोगों द्वारा अपने आप को काल गाल का ग्रास बना देते हैं, जो ठीक नहीं।

(४) अनसूया:—किसी की उन्नति, वृद्धि, बढौतरी को देखकर जलना और दुखी होना असूया और दूसरों को सुखी देखकर प्रसन्न होना अनसूया है, इसीलिए महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज ने आर्यसमाज के नियमों में एक नियम रखा कि "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए" असूया या ईर्ष्या एक ऐसी आग है जो मानव को अन्दर ही अन्दर जलाती रहती है और मानव के सब सुखों को स्वाहा कर देती है। दुर्योधन और जयचन्द जैसे व्यक्ति इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं जिन्होंने इस ईर्ष्या के कारण अपना तथा देश का सत्यानाश कर दिया। अतः इस ईर्ष्या को दूर करने का बड़ा सुन्दर उपाय पतञ्जलि मुनि कहते हैं। वह योगदर्शन में लिखते हैं

मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुखः
पुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ॥

अर्थात् जब सुखी मनुष्यों को देखो तो उनसे मित्रता बढ़ाओ, दुखी मनुष्यों पर दया करो, पुण्यात्माओं को देख कर प्रसन्न होओ और पापी मनुष्यों को देखकर उपेक्षा वृत्ति को धारण करो अर्थात् तटस्थ हो जाओ, ऐसा करने से तुम्हारे चित्त की शुद्धि होगी और तुम सदा प्रसन्न चित्त रहोगे। अतः ईर्ष्यावृत्ति को त्याग कर दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति समझने वाला ही सच्चा मनुष्य है। कहा है—

न गुणान् गुणिनो हन्ति स्तौति चान्यान् गुणानपि।
न हसेच्चान्यदोषांश्च सानसूया प्रकीर्तिता ॥

जो गुणियों के गुणों की बुराई नहीं करता अपितु दूसरे के गुणों को देखकर प्रशंसा करता है। और दूसरों की कमजोरियों या बुराइयों को देखकर हंसता नहीं अपितु अपना सुधार करता है वही मनुष्य है। कबीर ने कहा है—

दोष पराया देखकर चले हसन्त हसन्त
अपना दोष न देखते जाको आदि न अन्त।

दूसरे स्थान पर लिखा है—

यो धर्ममर्थं च कामं च लभते मोक्षमेव च।
न द्विष्यात् तं सदा प्राज्ञः सा अनसूया स्मृताबुधैः।

जो स्वयं तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करता

है और दूसरों को देख ईर्ष्या और द्वेष नहीं करता वही बुद्धिमान् है।

(५) अस्पृहा—का अर्थ है लालसा न होना अर्थात् तृष्णा का त्याग अस्पृहा है। तृष्णा पापों का मूल है, तृष्णा दुखों की जननी है, यह सबसे बड़ा अधर्म है, दुर्मति मनुष्य इसे छोड़ नहीं सकता। मनुष्य बूढ़ा हो जाता है पर यह बूढ़ी नहीं होती। यह एक ऐसा रोग है जो प्राणों के साथ ही समाप्त होता है। भर्तृहरि ने ठीक कहा, तृष्णा का नाश नहीं होता, मनुष्य का नाश हो जाता है। एक स्थान पर कहा गया है।

विवर्जयेदसन्तोषं विषयेषु सदा नरः
परद्रव्याभिलाषं च साऽस्पृहा कथ्यते बुधैः।

विषयों से विरक्ति और दूसरे के धन की इच्छा न करना अस्पृहा है।

सन्तोषस्त्रिषु कर्त्तव्यः स्वदारे भोजने धने।
त्रिषु चैव न कर्त्तव्योऽध्ययने जपदानयोः।

अपनी स्त्री में, भोजन में और धन मे सदा सन्तोष रखना चाहिए और स्वाध्याय, ईश्वर भक्ति और दान तीन में कभी सन्तोष न करना, यही अस्पृहा है।

दूसरे स्थान पर भी यही कहा है—

यथोत्पन्नेन कर्त्तव्यः सन्तोषः सर्ववस्तुषु।
न स्पृहयेत् परदारेषु सा ऽस्पृहा च प्रकीर्तिता॥

शक्ति के अनुसार काम करे, जो मिल जाय उस पर सन्तोष करे, पराई औरत को कुदृष्टि से न देखे यह अस्पृहा है।

(६) दमः—मन और इन्द्रियों का निग्रह करना दम कहा गया है।

श्री शंकराचार्य जी से किसी ने पूछा-महाराज! हमारा शत्रु कौन है? उन्होंने कहा-हमारी इन्द्रियां ही हमारी शत्रु हैं। फिर पूछा, हमारा मित्र कौन है-उत्तर दिया-हमारी इन्द्रियां ही हमारे सबसे बड़े मित्र हैं।

के शत्रवः सन्ति निजेन्द्रियाणि,
तान्येव मित्राणि जितानि यानि।

वह बोला-महाराज, बात समझ में नहीं आई कि वह इन्द्रियां हमारी शत्रु कैसे हैं और मित्र कैसे! तो वह बोले, कि प्रिय! जब यह हमारे वश में हों तो यह हमारी मित्र हैं, परन्तु जब यह हमारे वश में न रहें अर्थात् हम इनके वश में हों जायें तो मनुष्य के लिए प्रबल शत्रु रूप हो जाती हैं। पर इतनी बात ध्यान में रखनी चाहिए कि यह इन्द्रियाँ मन के आधीन हैं और मन प्राण के आधीन है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि जब मन इधर-उधर भागने लगे, इन्द्रियां चञ्चल हो उठें, प्राणायाम द्वारा प्राण रोक दो, सब रुक जाएंगे। इसके अतिरिक्त मन-निग्रह के दो उपाय गीता में महाराज कृष्ण ने कहे हैं। अर्जुन कहने लगे-महा-

राज, यह मन बड़ा चञ्चल और वायु से भी अधिक वेग वाला है इसे कैसे वश में लाया जाय, तो उन्होंने उत्तर दिया।

"अभ्यासेन च कौन्तेय वैराग्येन च गृह्यते"

कि हे अर्जुन ! यह मन बड़ा शक्तिशाली और चञ्चल है; परन्तु अभ्यास और वैराग्य से यह वश में किया जा सकता है। कहा भी है—

करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रस्सी आवत जात ते सिल पर पड़त निशान ।।

इस विषय में एक सुन्दर कथा प्रचलित है। कहते हैं एक राजा ने प्रसिद्ध कर दिया कि जो मेरी बकरी को 'रजा' के लायेगा उसे पांच सौ रुपये इनाम दिया जायेगा। बड़े-बड़े लोग आते, उस बकरी को ले जाते। उसे घर में रखते, खिलानें-पिलाते और जब उसका पेट भर जाता वह उसे राजा के पास ले जाते। राजा से कहते-महाराज, इसे हम रजा के लाये हैं। अब इसका पेट भर चुका है, हमें पारितोपिक दीजिये राजा कहता-चलो, इसकी परीक्षा कर लेते हैं कि इसका पेट भरा है कि नहीं। वह राजा उसे एक कमरा में ले जाता। उस कमरे में हरी-हरी घास, दाना, पानी रखा होता था। राजा कहता-इसके गले से रस्सी खोल दो। बकरी का स्वभाव है चाहे उसका कितना ही पेट क्यों न भरा हो खाने की वस्तु सामने देखकर एक बार तो उसमें अवश्य ही मुंह मार देगी। इसके अनुसार जब उसे

खोला जाता तो खाने की ओर दौड़ती और खाने की वस्तुओं में मुंह मारने लगती। राजा कहता-तुम तो कहते थे कि इसका पेट भर गया, परन्तु यह तो अभी भूखी है। ऐसे ही कितने हो लोग आते, बकरी को ले जाते। महीनों घर में रखते, नाना प्रकार की वस्तुएं खिलाते-पिलाते जब वह समझते कि इस का पेट भर गया है, राजा के पास लाते राजा जब कमरे में ले जाता बकरी के गले की रस्सी खोली जाती, तो वह अपने स्वभाव के अनुसार रस्सी छूटते ही दौड़ती, खाने की वस्तुए चबाने लगती इस प्रकार राजा कहता तुम तो कहते थे कि इसका पेट भर गया है परन्तु यह तो अभी भूखी है। इस तरह से कई मास गुजर गये पर राजा की शर्त कोई पूरी न कर सका और न ही इनाम पा सका एक किसान को बात सूझ गई और वह राजा के पास आकर कहने लगा महाराज मैं आपकी बकरी को तृप्त करके लाऊंगा, लोग कहने लगे मूर्ख है जब और बड़े लोग यह काम नहीं कर सके तो यह कैसे कर लेगा परन्तु वह किसान बोला तुम्हें इससे क्या, मैं बकरी को रजा के लाऊंगा, अन्ततः वह बकरी को घर ले गया और बकरी को अपने वश में करने का एक उपाय किया। उसने भी अपने कमरे में वह सारा सामान घास, पत्ते, दाना, पानी जैसा कि राजा के कमरे में देखा था रख दिया और बकरी को बाहर ले

जाकर खूब खिलाता पिलाता और जब समझता कि पेट भर गया है तो गले में रस्सी बांध उसी कमरे में लाता, लड़के से कहता इसकी रस्सी खोलदो, और स्वयं डण्डा लेकर खाने के सामान के पास बैठ जाता जब बकरी की रस्सी खुलती वह सामने खाने की चीजें देखती तो उनकी ओर भागती जब खाने की वस्तुओं में मुंह डालने लगती किसान मुंह पर डण्डा मारता। दस पन्द्रह दिन में बकरी सीधी हो गई। उसने समझ लिया कि यहाँ तो डण्डे पड़ते हैं आखिर ऐसा हुआ जब बकरी कमरे में लायी जाती रस्सी खोली जाती बकरी खाने की ओर बढ़ती परन्तु किसान के डण्डे को देख खड़ी हो जाती और देखती रहती मुँह तक न मारती, जब किसान को विश्वास हो गया कि अब यह ठीक हो गई है तो एक दिन किसान उसे राजा के पास ले गया और ले जाकर कहने लगा महाराज अब इस का पेट भर गया है। राजा ने कहा कि परीक्षा कर लते हैं— जब उसे कमरे में ले गये तो किसान डण्डा लेकर सामने बैठ गया राजा ने नौकर से कहा रस्सी खोलो जब उसने रस्सी खोली बकरी वस्तुओं की ओर लपकी परन्तु जब सामने डण्डे वाले उसी किसान को देखा तो खड़ी हो गई हिली तक नहीं, राजा हैरान रहगया कि यह क्या बात है? राजा किसान से बोला यह खाती क्यों नहीं, वह बोला पेट भरके लाया हूँ महाराज इसलिए नहीं खाती और क्या बात

है, राजा ने कहा शर्त तो मैं हार गया परन्तु तुमने क्या उपाय किया इसे कृपा करके बताओ किसान ने सारी बात बतादी राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और उसे पारितोषिक देकर विदा किया। इस दृष्टान्त का तात्पर्य यह है कि यह मन बकरी के स्वभाव वाला है जब कोई विषय सामने आता है उसकी ओर भागता है। परन्तु ज्ञानी ज्ञान के दण्ड से उसे बार बार रोकता है आखिर एक दिन ऐसा आता है कि यह मन विषयों से परे हो जाता है। और मनुष्य अपने उद्देश्य में सफल हो जाता है। इसका नाम दम है। एक कवि ने कहा है–

विषय का विषधर जब डसे तो ओ३म् जड़ी को चबा।
है नाग दमन की औषधि तू ढूंढन बाहर न जा॥

दूसरे कवि ने कहा है कि—

सत्संग की गंग में निशिदिन करो स्नान।
मन निर्मल हो जात है बढ़े विवेक ज्ञान।

सार यह है कि मन वश में करना दम कहलाता है और प्राणायाम, अभ्यास, वैराग्य, ईश्वर भक्ति, सत्संग स्वाध्यायादि के द्वारा यह मन वश में किया जा सकता है।

(७) दान—इसका अर्थ है देना, अपनी शक्ति अनुसार किसी अधिकारी को कुछ देना दान कहलाता है, अन्नदान, धन-दान, वस्त्र-दान, विद्यादान, श्रमदान आदि कई प्रकार के दान हैं। गीता में सात्विक, राजसिक, तामसिक तीन प्रकार

का दान कहा गया है। किसी को कुछ देना परन्तु बदले में कुछ लेने की भावना न रखना सात्विक दान है। इसका बड़ा महत्त्व है। हदीसों में लिखा है कि किसी ने मुहम्मद साहब से पूछा पहाड़ से भी भारी क्या चीज है ? उन्होंने कहा पहाड़ से भी भारी वह खैरात है जो दायें हाथ से दी जाय और बाएं हाथ को पता न लगे। बाएं हाथ से दी जाय तो दायें को भी पता न चले। साथ ही देश, काल, और पात्र को देखकर जो दान दिया जाता है वह सात्विक अर्थात् सर्वोत्तम दान कहलाता है। जिस स्थान पर जो कमी हो उसे पूरा कर देना देश के अनुसार दान है। जैसे, यदि किसी सड़क पर जल पीने का प्रबन्ध न हो, वहाँ जल का प्रबन्ध कर देना, नल लगवा देना, कुआँ बनवा देना, या प्याऊ लगवा देना यह देशानुसार दान है। अथवा किसी देश प्रान्त, नगर या गाँव में अकाल पड़ जाय या बीमारी फैल जाय तो वहाँ अन्न, औषधि, वैद्य आदि का प्रबन्ध कर देना देशानुसार दान है। भूखे को अन्न, प्यासे को पानी, नंगे को कपड़ा, रोगी को दवाई यह काल के अनुसार दान है और जिसको हम दे रहे हैं वह कैसा है, यह इस दान का दुरुपयोग तो न करेगा, यह देखकर देना पात्र के अनुसार दान देना है। किसी ने कहा है—पात्र-अपात्र का विचार करके देना बड़ा आवश्यक है; क्योंकि गौ को तृण खिलाने से भी उसका दूध बन जाता है और साँप को दूध पिलाने से भी जहर बन

जाता है। दही उत्तम वस्तु होने पर भी यदि पीतल के बरतन में जमा दिया जावे तो वह जहर हो जाता है। इस विषय में कबीर जी के जीवन की बड़ी सुन्दर घटना है। कहते हैं एक बार एक मांगने वाला कबीर जी के पास आया, परन्तु कबीर जी के पास कुछ देने को था नहीं। अतः वह सोच में पड़ गया; क्योंकि कहा गया है—

तुलसी कर पर कर करो कर तर कर न करो।
जा दिन कर तर कर करो ता दिन मरण करो ॥

'मांगन मरण समान है मत कोई मांगो भीख' मांगना बड़ा कठिन काम है। किसी मजबूरी के कारण ही यह मांगने आया होगा, इसलिये इसे खाली न लौटाना चाहिये। उन्होंने घर में नजर दौड़ाई तो कुछ सूत दिखाई दिया। कबीर जी ने वही उठाकर उस मांगने वाले को दे दिया। उसने जाकर उसका जाल बना लिया। जंगल में जाकर उस जाल द्वारा पक्षियों को फँसाकर लाता। कुछ बेचता और कुछ मारकर खा जाता। इस प्रकार उसका अच्छा निर्वाह होने लगा, साथ ही पैसा भी आने लगा और अच्छी आय होने लगी। एक दिन उसके मन में विचार आया कि भला हो कबीर जी का, जिसकी कृपा से हमारे बुरे दिन कट गए और भले दिन नसीब हुए। उनका जाकर धन्यवाद करना चाहिए, ऐसा मन में निश्चय करके वह कुछ फल, मिठाई, वस्त्र लेकर उनके घर गया। यह सब उन्हें

भेंटकर उनका बहुत धन्यवाद किया। कबीर जी पूछने लगे तुम कौन हो और कैसा धन्यवाद कर रहे हो? वह बोला—महाराज, मैं वही हूं जिसको आपने माँगने पर सूत दिया था। महाराज, आपकी कृपा से मेरे सारे संकट ही कट गए और साथ ही सारी जाल बनाने और पक्षी फँसाने की वार्ता भी सुनादी। कबीर साहब यह सुनकर रोने लगे और रोते हुए बोले—

सूम सूम सब तर गये दानी नरक पड़े।
बिना विचारे कबीरा दान न कोई करे॥

क्योंकि जितने जीवों की हत्या इसने की उसका कारण तो मैं ही हूँ। यदि मैं विचारकर और पात्र को देखकर दान करता तो मुझे इस पाप का भागी न बनना पड़ता। दूसरा राजसिक दान वह है जो बदले की भावना से, या किसी फल की कामना से, या किसी दबाव के कारण दुखी होकर दिया जाता है। तीसरा तामसिक दान है जो देश, काल, पात्र को विचार किये बिना दिया जाता है, या तिरस्कार के साथ दूसरों को दिया जाता हैं। स्मृतियों में उत्तम, मध्यम, निकृष्ट दान की और प्रकार से भी परिभाषा की गई है। वह कहते हैं कि जो पात्र हैं और जरूरत मन्द हैं उनके घर पर जाकर बिना माँगे उन्हें आदरपूर्वक देना यह उत्तम दान है। आवश्यकताओं से प्रेरित होकर घर पर आए हुए सन्तपुरुषों को माँगने पर दान देना और खाली वापिस

न लौटाना मध्यम-कोटि का दान है और अपना कुछ काम सिद्ध करवाकर पश्चात् कुछ देना यह तामसिक यानी निकृष्ट दान है। पर जैसे-कैसे भी देना ही उत्तम है। वेद में न देने वाले कंजूसों की स्थान-स्थान पर निन्दा की गई है और यहाँ तक कहा गया है कि जो दान दिए बिना खाता है वह पाप खाता है। जो भूखे को देखकर उसे देता नहीं अपितु अपने मन को कठोर बना लेता है वह कभी सुखी नहीं होता। अपनी कमाई में से न देकर खाने वाला भगवान् का चोर है। यज्ञ, दान और परोपकार भाव से रहित होकर जो धन एकत्रित किया है अन्त में वह उसी नर के नाश का कारण होता है। अतः 'दान पीछे कल्याण' की लोकोक्ति प्रसिद्ध हो गई है।

(८) दया—परस्मिन् बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्ये रिपौ तथा आत्मवद् वर्तितव्यं हि दयैषा परिकीर्तिता

अपना हो या पराया, मित्र हो या द्वेषी शत्रु, अपना बन्धु हो या कोई अन्यजन, कोई भी क्यों न हो उसे अपनी आत्मा समान समझकर उसके दुःखों को दूर करना दया कहाती है। अर्थात् अन्धे को रास्ता दिखाना, भूखे को अन्न प्रदान करना, नंगे को वस्त्र देना, रोगी को दवाई देना, निराश्रयों को आश्रय देना तुम्हारी दया है। दया करने से दया करने वाले तथा जिस पर दया की जाय दोनों को प्रसन्नता होती है—इसीलिए तुलसी जी ने कहा है।

दया धर्म का मूल है नरक मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये जब लग घट में प्राण ॥

अतः ऋषि लिखते हैं—मनुष्य उसी को कहना जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुख और हानि लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे, और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे, इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुण रहित क्यों न हों उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महा बलवान् और गुणवान भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहाँ तक हो सके वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उस को कितना ही दारुण दुख प्राप्त हो चाहे प्राण भी भले हो जावें परन्तु इस मनुष्यपन रूप धर्म से पृथक् कभी न होवे।

(सत्यार्थप्रकाश)

मानव निर्माण के साधन

सच्चे मानव का निर्माण कोई आसान या साधारण कार्य नहीं है। यह एक अद्भुत कला है, यह एक उच्च विज्ञान है जिसके जाने बिना मानव निर्माण का कार्य अत्यन्त कठिन है। वर्तमान युग के निर्माता, एवं सच्चे ज्ञाता सद्गुरु

दयानन्द ने इस विज्ञान को जाना था। इस विज्ञान को फैलाने के लिए ही उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना की थी परन्तु दुख से कहना पड़ता है कि आर्य-समाज के उद्देश्यों तथा नियमों को जानें बिना ही कई लोग यह प्रलाप करते दिखाई देते हैं कि अब आर्यसमाज का काम पूरा हो गया, हमारे सब सिद्धान्त संसार में फैल चुके हैं, हमारी सब बातें लोगों ने मान लीं। अतः अब आर्यसमाज की आवश्यकता नहीं रही। मेरा उनसे निवेदन है कि जब तक संसार का एक भी प्राणी रहेगा और नए बच्चे उत्पन्न होते रहेंगे उनको संस्कृत करने के लिए तथा उन्हें ऊँचा इन्सान तथा सच्चा मानव बनाने के लिए आर्यसमाज की आवश्यकता रहेगी। अतः ऋषि ने मानव को मानव बनाने के चार साधन कहे हैं—संस्कार, शिक्षा, यज्ञ, योग।

इन चारों साधनों द्वारा ही मानव शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक एवं सामाजिक रूप से समुन्नत तथा पूर्ण हो सकता है और यह कार्य आर्यसमाज ही पूरा कर सकता है।

(१) संस्कार—संस्कार शब्द सम् उपसर्ग और कृ धातु से बना है इसका अर्थ है किसी वस्तु या व्यक्ति को शुद्ध करना या उन्नत करना जब बच्चा उत्पन्न होता है तो वह न तो पूर्ण होता है और न ही शुद्ध। कई लोगों का कथन है कि जब बच्चा पैदा होता है वह निर्दोष होता है,

उसका मन सफेद चादर के समान होता है। संसार में आ कर ही यह गुण दोषों का ग्रहण करता है, यह सिद्धान्त सर्वथा असत्य है और उन लोगों की कल्पना है जो पुनर्जन्म नहीं मानते इसके विपरीत वैदिक सत्य सिद्धान्त यह है कि जब बच्चा पैदा होता है तव वह वाचिक, शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आत्मिक किसी अपेक्षा से भी न तो शुद्ध होता है न ही पूर्ण, इसलिए उसकी अपूर्णता और अशुद्धि दोनों को दूर करन के लिए कुछ साधनों की आवश्यकता होती है उन्हीं का नाम संस्कार है बालक मुख्य रूप से तीन प्रकार के प्रभावों से प्रभावित होता है। कुछ पूर्व जन्मों में संकलित अपने आन्तरिक प्रभावों से, कुछ माता पिता के प्रभावों से, तथा कुछ सोसाईटी के प्रभावों से, यह प्रभाव भी दो प्रकार के होते हैं भले और बुरे अर्थात् कुछ नेक और कुछ बद संस्कारों का प्रयोजन है बुरे प्रभावों का मिटाना और भले प्रभावों की रक्षा करना वा उन्हें बढ़ाना। संस्कार सोलह हैं जिनके द्वारा यह कार्य पूर्ण होता है।

दूसरा साधन शिक्षा—शिक्षा का दूसरा नाम ज्ञान या विद्या है, तृण से लेकर ईश्वर पर्यन्त सब वस्तुओं के पूर्ण ज्ञान को विद्या कहा जाता है। यह दो प्रकार की है परा विद्या और अपरा विद्या, सब प्रकार के भौतिक या सांसारिक (ज्ञान को अपरा विद्या और अप्राकृतिक, अभौतिक

अथवा परमार्थिक ज्ञान को परा विद्या के अन्तर्गत माना गया है इसे इस प्रकार से भी कह सकते हैं कि शरीर तथा शरीर से सम्बन्ध रखने वाले पदार्थों का ज्ञान अपरा-विद्या है। और आत्मा, परमात्मा, मुक्ति से सम्बन्धित ज्ञान का नाम परा विद्या है।

३ साधन यज्ञ—यज्ञ का अर्थ है देवपूजा, संगति करण और दान, बड़ों का आदर सत्कार करना, बराबर वालों से मेल मिलाप रखना और अपने से छोटों पर कृपा या दया दृष्टि रखना यज्ञ कहा जाता है। स्वामी जी के शब्दों में "जो अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त वा जो शिल्प व्यवहार और पदार्थ विज्ञान जो कि जगत् के उपकार के लिए किया जाता है उसको यज्ञ कहते हैं, परन्तु इस के अतिरिक्त पांच महायज्ञ हमारे शास्त्रों में माने गए हैं। (१) ब्रह्मयज्ञ—ईश्वर की भक्ति और सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय करना, (२) देवयज्ञ—अग्निहोत्र द्वारा वायु, जल, आदि देवों को शुद्धि और रोगों से निवृत्ति प्राप्त कर स्वास्थ्य लाभ करना (३) पितृयज्ञ—माता पिता तथा वृद्धों की सेवा करना और कृतज्ञता प्रकट करना (४) बलिवैश्वदेवयज्ञ लूले लंगड़ों, कौवे कुत्तों, एवं दीन अनाथों की अन्न, धन, वस्त्र औषध से सहायता करना (५) अतिथि यज्ञ--साधु, सन्त, महात्मा, सदाचारी, परोपकारी घर पर आए श्रेष्ठ पुरुषों का अन्न, वस्तु, सेवा द्वारा सम्मान करना।

(४) योगः--चित्तवृत्तियों का निरोध और प्रभु से मन को जोड़ना योग कहलाता है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि यह योग के आठ अंग माने गए हैं। इन अङ्गों द्वारा ही योगी योग को सिद्ध कर सकता है अतः संस्कारों का उद्देश्य है मानव के अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा आत्मा को उन्नत वा निर्मल करना।

शिक्षा का ध्येय है मानव को तृण से लेकर ईश्वर पर्यन्त सब पदार्थों का यथार्थ ज्ञान कराकर पूर्ण ज्ञानी बनाना।

यज्ञ का अर्थ है ज्ञान के अनुसार मानव को व्यवहारिक जीवन में प्रवृत्त करना या (Practical Life) को सुन्दर बनाना।

और योग का उद्देश्य है संसार के सब कर्मों को निष्काम भाव से करना अपने व्यवहारिक कार्यों में अनासक्त रहकर चित्तवृत्तियों का निरोध करके ईश्वर के दर्शन करना या जीवन के अन्तिम ध्येय मुक्ति को प्राप्त कर लेना।

अतः सिद्ध है कि इन उपरोक्त साधनों द्वारा ही मानव अपने जीवन का निर्माण कर सकता है और लौकिक तथा पारलौकिक उन्नति को प्राप्त कर कल्याण का भागी वा भोगी हो सकता है।

इति

आर्यसमाज करौल बाग देहली का संक्षिप्त कार्य विवरण

वर्तमान काल में जो लोक हितकारी कार्य इस समाज द्वारा हो रहे हैं उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

१. जन साधारण में वैदिक विचारों का प्रसार, दैनिक, साप्ताहिक, पारिवारिक और मुहल्ला सतसंगों द्वारा करना।
२. सत भ्रावों आर्य कन्या महाविद्यालय द्वारा साधारण शिक्षा के अतिरिक्त कन्याओं में शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति की भावनायें उत्पन्न करना।
३. आर्य कुमार सभा द्वारा बालकों की शारीरिक एवं मानसिक उन्नति के लिए प्रयत्न करना।
४. विधवा अनाथ निर्धन विद्यार्थी, अन्ध-बालक बालिकाओं तथा अन्य पीड़ितों की धन आदि से सहायता करना।
५. बाढ़ तथा अन्य आकस्मिक आपत्तियों में पीड़ित जनता की धन भोजन और वस्त्र आदि से सहायता करना।
६. राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा संस्कृत के शिक्षण का समय समय पर निशुल्क प्रबन्ध करना।
७. संस्कारों आदि पर जनता के लिए विद्वान पुरोहितों का प्रबन्ध करना।
८. संस्कारों में वेदी, हवन कुण्ड, चौकी, बरतन आदि प्रबन्ध करके जनता की सहायता करना।
९. जनता के स्वाध्यायार्थ पुस्तकालय तथा वाचनालय चलाना।
१०. घरेलू कर्मचारियों के लिए शिक्षा का निशुल्क प्रबन्ध करना।

जन सेवा के उपरोक्त कार्यों पर लगभग ३५०००) रु० पैंतीस हजार रुपये प्रतिवर्ष व्यय किये जाते हैं।

अतः इस समाज की तन मन धन से सहायता करना सब भाई-बहनों का परम कर्तव्य है। निवेदक

निरञ्जन नाथ	देवदत्त आर्य	पुष्पापुरी	वेदकुमारी
प्रधान	मन्त्री	प्रधान	मन्त्रिणी

सम्राट् प्रेस, पहाड़ी धीरज, देहली।

ओ३म्

आर्य और दस्यु

"विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवः" ऋग्वेद

"आर्य तथा दस्युओं को पहचानो"

लेखक

पं० हरिदेव जी पुरोहित

आर्यसमाज करौलबाग

देहली

प्रकाशक

श्री रामलुभाया जी एम० ए० बी० टी०

मन्त्री

आर्यसमाज करौलबाग

देहली

आर्यसमाज करौलबाग देहली के वार्षिकोत्सव पर

प्रचारार्थ भेंट

प्रथम बार

२०००

बैशाखी सं० २०१२

दयानन्दाब्द १३१

भूमिका

आर्यसमाज करोलबाग दिल्ली का प्रगतिशील समाज है। वैदिक धर्म के प्रचार में यह सदा जागरूक रहा है। यह प्रचार के और साधनों के साथ ट्रैक्टों के प्रकाशन में भी विशेष महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। इस ट्रैक्ट के योग्य लेखक विद्वद्वर पण्डित श्री हरिदेव जी 'सिद्धान्त भूषण', 'साहित्य रत्न' पुरोहित आर्यसमाज क० बा० ने इससे पूर्व दो ट्रैक्ट और लिखे थे जिनको आर्यसमाज ने प्रकाशित करा कर धर्म-प्रचार किया। १—वैदिक धर्म ही क्यों ? २—सूर्य ग्रहण और सच्चे तीर्थ का माहात्म्य। इन दोनों को ही लोगों ने बहुत पसन्द किया।

प्रस्तुत पुस्तिका में हमारे पुरोहित जी ने इस बात को स्पष्ट किया कि आर्य और दस्यु परमेश्वर से निर्मित भेद न होकर गुण-कर्म-गत नाम हैं।

हमारा विश्वास है कि इस ट्रैक्ट को पढ़कर जनसाधारण में प्रचलित आर्य-दस्यु सम्बन्धी ग़लत धारणायें तथा भ्रम दूर होंगे।

इस स्तुत्य कर्म के लिए हम अपने पुरोहित जी का धन्यवाद करते हैं।

निवेदक—

शिवराम चण्ढोक
प्रधान

रामलुभाया
एम० ए०, बी० टी०
मन्त्री

वेद का पवित्र मन्त्र है, "अहं भूमिमददाम् आर्याय" अर्थात् मैंने यह संसार आर्यों के लिये बनाया है, अतः इस पर अधिकार भी आर्यों का ही होना चाहिए, दस्युओं और राक्षसों का नहीं। इसी से संसार में सुख और शांति की वृद्धि हो सकती है, अन्य कोई मार्ग नहीं। इसी लिये वेद पुनः आदेश देता है "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" अर्थात् ए मेरे अमृत पुत्रो ! तुम स्वयं आर्य बनो और साथ ही सारे संसार को भी आर्य बनाओ। कई भाई आर्य शब्द सुनते ही चौंक पड़ते हैं, किन्तु इस शब्द को सुन कर डरने और घबराने की कोई भी बात नहीं, क्योंकि हमारे जितने भी प्राचीन ग्रन्थ, यथा वेद, शास्त्र, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, गीता आदि हैं, उन सब में हमारा नाम आर्य ही लिखा है, हिन्दू नाम तो विदेशियों ने अपने युग में हमें चिढ़ाने अथवा नीचा दिखाने के लिए दिया, जिस को हम अज्ञानता से उत्तम समझने लगे हैं। वास्तव में हमारा नाम आर्य ही है, हिन्दू नहीं।

एक प्रश्न स्वभावतः ही उत्पन्न होता है, कि आर्य कौन है अथवा आर्य किसे कहते है ? जिस पर वेद इतना बल देता है, अतः बहुत संक्षेप से ऋषि, मुनि, महात्मा तथा विद्वानों के किये आर्य शब्द के लक्षणों एवं अर्थों को नीचे देते हैं।

(१) आचार्य यास्क मुनि आर्य शब्द का अर्थ करते हुए लिखते हैं, "आर्य ईश्वरपुत्रः" अर्थात् आर्य वह है जो ईश्वर का सच्चा पुत्र है, जो प्रकृति तथा प्रकृति से बने चमकीले और लुभावने पदार्थों में मन को न फंसाकर सदैव पाप कर्मों से बचा रहता है।

(२) महर्षि दयानन्द जी महाराज आर्य शब्द की महिमा इस प्रकार बखान करते हैं। 'आर्य उत्तम विद्या धर्म सामर्थ्यः' अर्थात् आर्य वह है जो उत्तम वेदादि विद्या को ग्रहण करता है तथा धर्म आदि सत्कार्यों के द्वारा अपने शरीर, मन, आत्मा एवं बुद्धि को निर्मल तथा बलवान् बनाता है।

(३) महात्मा पाणिनि मुनि जी के व्याकरण द्वारा ऋ=गतौ=धातु से आर्य शब्द की सिद्धि होती है, जिसका अर्थ है कि आर्य बह है जो क्रियाशील है, पुरुषार्थी है, सदा उत्तम कार्यों में रत रहता है, कभी निकम्मा, निठल्ला, अकर्मण्य, आलसी बनकर अपने जीवन को व्यतीत नहीं करता।

(४) कौटिल्यार्थ शास्त्र के रचयिता महामुनि चाणक्य लिखते हैं "आर्ये न तु दासभावः" अर्थात् जो अपने-पराये किसी का दास नहीं अथवा जिसके मन में दूसरों को हानि पहुंचाने की भावना स्वप्न में भी उत्पन्न न हो; वही सच्चा आर्य है।

(५) कई विद्वान् 'अर्यते सततं चार्तैः" लक्षण करते हैं, अर्थात् जो पीड़ितों, दुखियों, निर्बलों, असहायों की सहायता के लिए सदा तत्पर रहता है, जिसका दिल दूसरे के दुःख से द्रवित हो उठता है वही सच्चा आर्य पुरुष है।

(६) दूसरे विद्वान् आर्य शब्द की निरुक्ति इस प्रकार करते हैं "आराद् यातीति आर्यः" अर्थात् जो द्वेष-भाव से सर्वदा दूर भागता है और अपने-पराये के भेद-भाव को मन से निकाल कर सबसे प्रेमपूर्वक वर्तता है वह आर्य है।

(७) कई भाई "अर्य एव आर्यः" इस प्रकार लक्षण करते हुए कहते हैं कि जो जितेन्द्रिय है अपनी इन्द्रियों और मन के आधीन नहीं, अपितु उनका स्वामी है उसको विद्वद्गण आर्य कहते हैं।

कर्त्तव्यमाचरन् कार्यमकर्त्तव्यमनाचरन्।
तिष्ठतिहि प्रकृताचारे स वा आर्य इति स्मृतः॥

अर्थात्—जो करने योग्य कार्यों को करता, न करने योग्य कार्यों को कभी नहीं करता, और अपने बड़े बजुर्गों, विद्वानों और श्रेष्ठ पुरुषों से निर्धारित एवं विस्तारित धर्मानुकूल सत्पथ पर स्थिर रहता है वह आर्य है।

(८) दूसरे स्थान पर मिलता है "वृत्तेन भवति आर्यो न धनेन न विद्यया" अर्थात् जिसका चरित्र बहुत ऊँचा है वही पुरुष आर्य कहलाने योग्य है, केवल धन और विद्या से कोई आर्य नही कहला सकता।

(१०) विदुर नीति में महात्मा विदुर आर्य का उल्लेख इस प्रकार करते है—

न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं न दर्पमारोहति नास्तमेति।
न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं तमार्यशीलं परमाहुरार्याः ॥
न स्वसुखे वै कुरुते प्रहर्षं नान्यस्यदुखे भवति प्रहृष्टः।
दत्वा च पश्चात् कुरुते न तापं स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः ॥

अर्थात्—जो शान्त हुए झगड़ों को पुनः प्रदीप्त नहीं करता, न कभी अभिमान करता और न ही दीन-हीन या गिरे विचारों को मन में स्थान देता है, विपत्ति में भी जो कभी किसी का अहित चितन नहीं करता, जो अपने सुख के दिनों में विषयों में व्यस्त नहीं होता या फूल कर कुप्पा नहीं हो जाता, और दूसरों को दुखी देख प्रसन्न नहीं होता अपितु उनके दुख दूर करने मे लग जाता है, जो धर्म कार्यों में अपना तन, मन, धन सर्वस्व स्वाहा करके भी कभी शोक या चिता नहीं करता, श्रेष्ठ पुरुष ऐसे लोगों को ही आर्य कहते हैं।

(११) व्यास जी अपने शब्दों में आठ गुणों से युक्त पुरुष को आर्य कहते है। यथा

ज्ञानी तुष्टश्च दान्तश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः
दाता, दयालुर्नम्रश्च स्यादार्योह्यष्टभिर्गुणैः।

अर्थात् आर्य वह है जो ज्ञानी, सन्तोषी, मन को वश में रखने वाला, सत्यवादी, इन्द्रिय विजयी, दानी दयालु और नम्र है।

आत्मचिन्तनमास्तिक्यमास्था वैदिककर्मसु ।
आचार आर्जवं प्राहुरार्यचिह्नं विचक्षणा ।

आत्म चिन्तन करने वाला, ईश्वर पर पूर्ण विश्वास करने वाला, वैदिक कर्मों में आस्था रखने वाला, चरित्रवान् तथा जीवन में सरलता धारण करने वाले को विद्वान् लोग आर्य कहते हैं ।

अतः विस्तार न करते हुए यदि संक्षेप से कहें तो आर्य वह है जिसमें निम्न गुण हों—

(१) जो ईश्वर का प्यारा है, केवल ईश्वर से प्रेम करता है। प्रकृति तथा प्राकृतिक वस्तुओं में आसक्त नहीं। (२) जो उत्तम विद्या और धर्म से युक्त है, अविद्या और अधर्म से नहीं। (३) जो क्रियाशील और पुरुषार्थी है आलसी और पराधीन नहीं। (४) जो स्वतंत्र और स्वाधीन है किसी का दास नहीं। (५) जो दीनों, हीनों, निर्धनों, शरणागतों का रक्षक है, भक्षक नहीं। (६) सबको मित्र दृष्टि से देखता है वैर और द्वेष दृष्टि से नहीं। (७) जो मर्यादित जीवन व्यतीत करता है अमर्यादित नहीं। (८) जो संयमी अर्थात् इंद्रियों और मन का स्वामी है। असंयमी और दुश्चरित्र नहीं। (९) जो संसार में फैली अशान्ति और झगड़ों को दबाता है बढ़ाता नहीं। (१०) जो आत्म-संम्मानी और नम्र है, अभिमानी और अक्खड़ नहीं। (११) जो सुख-दुख में समभाव से रहता है, विषम एवं खिन्न भाव से नहीं। (१२) जो

परोपकारी और सेवा-व्रतधारी है स्वार्थी और मिथ्याचारी नहीं ।

दस्यु

आर्यों के विपरीत गुण, कर्म, स्वभाव वाले मनुष्यों को दस्यु, राक्षस, असुर या अधम पुरुष कहते हैं, आगे उनका वर्णन करेंगे । वेद ने स्वयं उनका उपदेश किया है—

रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत । यो नो दुःशंस ईशत ॥
मानोऽद्य गवां स्तेनो माऽवीनां वृक ईशत ॥

अथर्व १६।४७।६

इस मंत्र में दस्यु के चार लक्षण बतलाये गए हैं । (१) प्रथम दस्यु या अधम पुरुष वह है जो रक्षः=राक्षस है । राक्षस दो सिर, चार टाँग, लम्बे दांत या सींगों वाले भयंकर जीव नहीं ; परन्तु रक्षः वह लोग हैं जो "र" अपने रमन के लिए दूसरों का क्षय करने वाले हैं । भर्तृहरि ने भी कहा है कि एक सत्पुरुष होते हैं जो अपनी हानि करके भी दूसरों का भला करते हैं । दूसरे मनुष्य होते हैं जो अपने भले के साथ-साथ दूसरों का भी भला करते हैं । तीसरे राक्षस हैं जो अपने स्वार्थ के लिए दूसरों का नुकसान करने में तत्पर रहते हैं । इससे पता चला कि जो स्वार्थपरायण एवं खुदगर्ज है वही रक्षः=राक्षस या दस्यु है ।

(२) अघशंस—जो पाप प्रशंसक है अर्थात् पापों और बुराईयों की भी प्रशंसा करता रहता है । यथा एक बार की

बात है कि कुरुक्षेत्र में दो तीन आदमी सड़क के किनारे पर बैठे हुए शराब पी रहे थे। मैंने इनसे कहा कि आपको लज्जा नहीं आती कि जिसको आप तीर्थ और पवित्र स्थान समझते या मानते हो यहां पर आकर भी ऐसे कुकर्म करते हो। उनमें से एक बोला, "कि तुम्हें क्या पता, जरा एक घूंट पीकर देखो तो पता चले। यह तो अमृत है इसी प्रकार मांस खाना तो बहादुरों का काम है। व्यभिचार करने में क्या बुराई है इत्यादि-इत्यादि" ऐसे सब लोगों को दस्यु कहा गया है। पाप प्रशंसक लोग ही दस्यु हैं।

(३) दुःशंस—जो बुरा भाषण करने वाले हैं जिनके मुंह से सदैव दूसरों के अहित तथा बुराई करने की बात ही निकलती है। जो जब बोलते हैं तब दूसरों को दुखाने, चिढ़ाने और सताने के लिये ही बोलते हैं। वही अधम पुरुष दस्यु कहे जाते हैं।

(४) गवां स्तेन—इसका अर्थ है गौओं की चोरी करने वाला, परन्तु गौ के कई अर्थ हैं। यथा भूमि, गाय, इन्द्रियां, वाणी इत्यादि, जो दूसरों की भूमि पर अधिकार जमाने वाला है। दूसरे की गौओं को छीनने वाला है। इन्द्रयों से उलटे काम करने वाला है, मन में कुछ और रखता तथा वाणी से उसके विपरीत बोलता है वह दस्यु है।

(५) अवीनां वृक—इसका शब्दार्थ है, भेड़ों का संहार करने वाला भेड़िया, परन्तु इन शब्दों में बड़े गूढ़ तत्व का

निर्देश किया गया है। इसका आन्तरिक भाव है—गरीबों, बेज़बानों, का नाश करने वाला, दीनों को सताने वाला, दूसरों का घात पात करने वाला। ऐसे दुर्गुणी दुष्ट पुरुषों का हमारे पर अधिकार न हो।

ऋग्वेद मण्डल ७ सूक्त ६ मन्त्र ३ में दस्यु के लक्षण इस प्रकार लिखे हैं।

नाक्रतून् ग्रथिनो मृध्रवाचः पणींरश्रद्धामवृधाम यज्ञान्।
प्र प्रतान् दस्युरग्निर्विषाय पूर्वश्चकारापराऽयज्यून्॥

(१) अक्रतु—जो कामचोर, आलसी पुरुषार्थ रहित, निकम्मा, निठिल्ला और दुर्व्यसनी है वह दस्यु है, अथर्ववेदानुसार। "यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम्" अर्थात् जो कार्य करने की योग्यता रखते हुए भी कार्य नहीं करता और टूटे हाथ-पाँव वाले के समान बना रहता है वह दस्यु है।

(२) ग्रन्थी—दिल में गांठ रखने वाला, कठोर हृदय वाला, ऊँट के समान वैर को न भूलने वाला तथा दूसरों के दुःख को देखकर भी जिसका हृदय पिघलता नहीं। अपितु जो दूसरों को दुःख में देखकर या दुःख में डालकर प्रसन्न होता है। वह दस्यु है।

(३) पणिः—लोभी और लालची धर्म कार्यों में भी व्यापार बुद्धि रखने वाला, जो हर समय, हर कार्य में, हर एक से पैसा बटोरने की बात ही सोचता है। किसी ने कहा, महाराज मन्दिर में आया करो, कहा क्या मिलेगा,

सत्संग में बैठा करो, उत्तर मिला क्या मिलेगा, आर्यसमाज मन्दिर में यज्ञ हो रहा है दर्शन देना, जबाब दिया क्या मिलेगा। इस प्रकार के लोगों को ही दस्यु कहा गया है।

(४) मृध्रवाक्—कड़वा बोलने वाला, सख्त, करख्त, और बद जबान, बोलने वाला जो अपनी वाणी द्वारा सुख को दुःख में, शान्ति को अशान्ति में, हर्ष को विषाद में, हँसी को रंज में बदल देता है वह दस्यु है।

(५) अश्रद्ध:—श्रद्धारहित=जिसको धर्म में, आत्मा में, परमात्मा में, सत्पुरुषों में, यज्ञ में, परोपकार में, किसी भी सत्कार्य में, श्रद्धा नहीं। जो अपनी अश्रद्धा के कारण अच्छाई में से भी बुराई निकालने वाला है, अमृत से विष निकालने वाला है। वह दस्यु है।

जैसे एक महानुभाव व्याख्यान के पश्चात् कहने लगे कि पं० जी आप लोग तो व्यर्थ में ही भरत की प्रशंसा करते हैं और कहते फिरते हैं कि भरत जैसे भाई होने चाहियें। देखो भरत ने भाई की खड़ाऊं गद्दी पर रखकर राज्य किया। वास्तव में भरत बड़ा चालाक था, उसने सोचा राम वन में भी खड़ाऊ पहने है किसी प्रकार से यह उतरवालो। अपने आप नंगे पांव कांटों में मरेगा और धूप में जलेगा। ऐसे लोगों को ही दस्यु कहा गया है।

(६) अवृद्ध:—जो वृद्धि अर्थात् उन्नति की ओर अग्रसर नहीं होता अपितु सदैव अवनति की ओर ही बढ़ता है। जो

अपने कार्यों से सदा नीचे ही नीचे जाने वाला है। जो दूसरों की उन्नति को देखकर स्वयं उन्नत नहीं होना चाहता, अपितु उनकी टांग घसीट कर उनको भी नीचे गिराने की सोचता है।

(७) अयज्ञ: जो यज्ञ से रहित, ब्रह्म यज्ञ— (Spritual Development) यानी मन की शान्ति और आत्मा का विकास (२) देव यज्ञ–अग्निहोत्र= शारीरिक शांति और आरोग्यता (३) पितृ यज्ञ— (Social Development) = विद्वानों, उपदेशकों, धर्म प्रचारकों और बड़ों का सत्कार करना = अर्थात् समाजिक शक्ति को बढ़ाना। (४) बलिवैश्वदेव यज्ञ= Universal Development=सब प्राणियों से प्रेम करना, संसार का उपकार करना। (५) अतिथियज्ञ=गरीबों और अकस्मात् आ जाने वाले लोगों का सत्कार करना— उपरोक्त पांच यज्ञों का जो विरोधी है, वह दस्यु है।

(८)अयज्यू:=बुराई, भलाई, पाप-पुण्य, सत्य-असत्य-धर्म -अधर्म का विवेक न रखने वाला अर्थात् सद्मार्ग को छोड़ कर कुमार्ग की ओर जाने वाला अथवा विद्वान् श्रेष्ठ पुरुषों का अनादर करने वाला दस्यु है।

दूसरे स्थान पर ऋग्वेद १६।६४।१२ में कहा है।

"तावद् दुःशंसं मर्त्यं दुर्विद्वासं रक्षिस्विनं आभोगं हन्मना हतम्"

इस मन्त्र में निम्न प्रकार से राक्षस या दस्यु के चिह्न बतलाए गये हैं।

(१) दुःशंस—दूसरों की निंदा करने वाला, बिना कारण दूसरों की बुराई करने वाला, सद्गुणों में दुर्गुणों का बखान करने वाला अथवा बुरी कीर्ति वाला अर्थात् जिसका दुर्गुणों के कारण सर्वत्र अपयश फैला हुआ है।

(२) मर्त्य—मरने योग्य, नाश की ओर बढ़ने वाला अपने हाथों अपना विनाश करने वाला, अथवा जिसके बारे में लोग यह सोचें कि यह मर जाय तो अच्छा है।

(३) दुर्विद्वान्—बुरी विद्या को धारण करने वाला विद्यावान् हो कर भी अपनी विद्या से लोगों का अकल्याण करने वाला। विद्या से लोगों को धोके में रखकर अपना प्रयोजनसिद्ध करने वाला।

आभोगम्—चारों ओर से भोगों की इच्छा करने वाला, (Eat drink and be merry) खाओ, पीओ, मौज उडाओ--जब तक जीओ सुख से जीओ, कर्जा उठाकर भी घी पीओ, ऐसा जिसने जीवन का उद्देश्य बना रखा है, ऐसे राक्षस का दृढ़ता के साथ नाश करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त अथर्व ८।६।१०।। में अधम पुरुषों के लक्षण इस प्रकार गिनाये गये हैं—

ये शाला परिनृत्यन्ति सायं गर्दभनादिनः ॥
कसूला ये च कुक्षिलाः ककुभा करुमा स्रिभाः ॥
तानू ओषधे: त्व गन्धेन विषूचीनान् विनाशय ॥

(१) अर्थात् शालाः—इधर-उधर व्यर्थ घूमने फिरने वाले, आवारागर्द।

(२) गर्दभनादिनः—गधे के समान नाद करने वाले, व्यर्थ शोर मचाने वाले।

(३) सायं परिनृत्यन्ति—सायंकाल को, कुछ अन्धेरे में जो विक्षिप्त नाच करने वाले हैं। चलते फिरते बेहूदा हरकतें करने वाले हैं। बिना कारण दूसरों से छेड़ छाड़ करने वाले हैं।

(४) कसूलाः—बिना मतलब दूसरों के सिर हो जाने वाले, झगड़ालू।

(५) कुक्षिला—बड़ी-बड़ी कोखों वाले, पराया माल खा-खा कर मोटे-ताजे बने हुए।

(६) ककुभाः—निंदा योग्य वस्त्रों को पहिनने वाले= बद पोषाक, फैशन के पीछे अपना सर्वस्व नाश करने को उद्यत रहने वाले, दिखावे का जीवन बिताने वाले।

(७) करुमाः=अपवचनों का प्रयोग करने वाले—गाली गलौच बकने वाले।

(८) स्त्रिभाः=लुच्चे लफंगे जो लुक-छिप कर पाप करने वाले हैं। ऐ राजन् ऐसे दुष्ट पुरुषों को तुम ऐसे नाश करो जिस प्रकार औषधि अपने गन्ध से बीमारी के कृमियों को नाश कर देती है। यह थोड़े से चिह्न या लक्षण (दस्यु) दुष्ट पुरुषों के ऊपर कहे गये, ऐसे अनेकों वेद मन्त्र हैं जिन में दस्यु लोगों का वर्णन किया गया किन्तु लेख लम्बा न हो जाय इस लिये यहीं विश्राम देते हैं और सब भाई-बहनों से प्रार्थना करते हैं कि उपरोक्त आर्यों तथा दस्यु पुरुषों के गुण

अवगुणों का विचार करें। तथा दस्यु अनार्यों के मार्ग को छोड़ आर्यों के सन्मार्ग का ग्रहण करें।

इति शम्

क्या वह आर्यसमाजी है?

(१) स्वदेश में रहता हुआ विदेशी संस्कृति और सभ्यता का अनुकरण करने वाला। (२) राष्ट्रीय हिंदी को छोड़ कर विदेशी भाषा में कारोबार करने वाला। (३) मांस, शराब, जुवा, अण्डे, तम्बाकू आदि के ब्यसनों में से किसी एक का भी सेवन करने वाला। (४) जातपात, छूतछात और अपनी जन्म-जाति मूलक विरादरियों के बन्धनों में जकड़ा हुआ। (५) अपनी संतानों को ईसाई और अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा प्रधान संस्थाओं में शिक्षा दीक्षा देने वाला। (६) रिश्वत लेने ब्लैक मारकीट करने और अधर्म कार्यों द्वारा धन कमाने वाला। (७) घर में कोई संस्कार न करने वाला, स्त्रियों, विरादरियों के या अन्य किसी भी दबाव से अपने घर में पौराणिक प्रचारों तथा संस्कारों के अनुकूल कार्य करने वाला। (८) वेद, शास्त्र, सत्यार्थ प्रकाश आदि सद् ग्रन्थों का स्वाध्याय न करने वाला। (९) स्वयं विधुर होते हुए कुंवारी कन्या से विवाह करने वाला।(१०) एक समय में एक से अधिक

विवाह करने वाला। (११) १६ वर्ष से कम लड़की और पच्चीस वर्ष से कम लड़के का विवाह रचाने वाला।(१२)अपने पदों के लिये आर्यसमाज में झगड़ा पैदा करने वाला। अपने घर में सन्ध्या एवं यज्ञ आदि न करने वाला—

संसार में ऐसा कौन अभागा नरतनधारी होगा, जो इन गुणों को धारण करके तथा अवगुणों को त्याग कर सच्चा आर्य बनकर सुखी होना नहीं चाहेगा। थोड़ा पुरुषार्थ करने की आवश्यकता है। आर्यो ! सारा संसार आपकी ओर आँख पसार कर देख रहा है। उठो ! आलस्य और निद्रा को त्याग कर आगे बढ़ो, वेद का नाद संसार के कोने-कोने में गुञ्जा दो, विश्व में फैली अविद्या, अंधकार और जहालत को दूर भगा दो। किन्तु यह तभी हो सकेगा जब तुम स्वयं सत्यकामी, वेदानुगामी, सच्चे आर्य बनोगे, घर का दिया जला कर औरों का फिर जलाओ, अतः समय है, अब भी सम्भलो, चेतो, जागो, होश में आओ, और ऋषियों द्वारा दी गई चेतावनी को सावधान हो ध्यान से सुनो, क्या ही सुन्दर कहा है—

बनो आर्य और जगत् को बना दो।
यह संदेश वेदों का घर-घर सुना दो॥

॥ ओ३म् ॥

सूर्य ग्रहण

और

सच्चे तीर्थ का महात्म्य

★

लेखक—

श्री पं० हरिदेव जी आर्योपदेशक

सिद्धान्त भूषण पुरोहित आर्य समाज करौल बाग देहली

★

प्रकाशक—

श्री मास्टर रामलभाया जी एम. ए., बी. टी.

मन्त्री, आर्य समाज करौल बाग, दिल्ली

प्रथमबार ५००० | विक्रम सम्वत २०११ | प्रचारार्थ

सार्वदेशिक प्रेस, पाटौदी हाउस, दरियागंज, दिल्ली-७

निवेदन

आर्यसमाज करोलबाग एक प्रगतिशील समाज है। और भारतवर्ष की मुख्य समाजों में उसको एक ऊंचा स्थान प्राप्त है। वेद प्रचार, शिक्षा और समाज सुधार क्षेत्रों आदि में इस समाज ने प्रशंसनीय कार्य किया है। अन्य आर्य्य समाजें भी अपनी अपनी शक्ति के अनुसार समाज सुधार का कार्य कर रही हैं लेकिन फिर भी अज्ञानता और अंधविश्वास के कारण हिन्दु जाति का अमूल्य समय और धन जो अन्य आवश्यक कार्यों में लगना चाहिये था व्यर्थ जा रहा है। इस ओर जितना अधिक ध्यान दिया जाय कम है।

सूर्य ग्रहण चन्द्र ग्रहण वा तीर्थोंके सम्बन्धमें भी इसी प्रकार बहुत लोग भूल में हैं। ३० जून १९५४ के पूर्ण सूर्य ग्रहण के अवसर पर लोगों की इस भूल को दूर करने के लिए आर्यसमाज करोल बाग अपने सुयोग्य पुरोहित श्री पं० हरिदेव जी सिद्धान्त भूषण द्वारा यह ट्रैक्ट जनता की सेवा में भेंट कर रहा है। आशा है इसे ध्यान पूर्वक पढ़ कर नर नारी पूरा लाभ उठायेंगे। गत वर्ष समाज ने "वैदिक धर्म ही क्यों अर्थात् वैदिक धर्म की विशेषताएं" नाम का ट्रैक्ट प्रकाशित किया था उसे भी अवश्य पढ़ें।

निवेदक :—

शिवराम चपढौक
प्रधान

रामलभाया M. A., B. T.
मन्त्री

आर्य समाज, करोल बाग, दिल्ली

❀ ओ३म् ❀

सूर्य ग्रहण

और

सच्चे तीर्थ का महात्म्य

[श्री धर्मप्रकाश अपने कमरे में बैठे पुस्तक का स्वाध्याय कर रहा था कि अकस्मात् चन्द्रप्रकाश ने प्रवेश किया और नमस्ते के पश्चात् छूटते ही बोले कहिये श्रीमान जी तबीयत कैसी है स्वस्थ चित्त वा प्रसन्न तो हैं ? और चलने की तैयारी है कि नहीं ?]

धर्मप्रकाश—क्या बात है ? आज तो बड़े प्रसन्न मालूम होते हो कहां चलने की तैय्यारी कर रहे हो ?

चन्द्रप्रकाश—वाह जी वाह ऐसे भोले बन गये जैसे मालूम ही न हो।

धर्मप्रकाश—मैं कोई सर्वज्ञ तो हूँ ही नहीं जो बिना कुछ बताये मन की बात जान लूं आखिर बात क्या है कुछ बतलायें भी तो पता चले।

चन्द्रप्रकाश—बात क्या है जी अब कि सूर्य ग्रहण का बड़ा भारी मेला कुरुक्षेत्र में लग रहा है। बहुत लोग वहां जाने की तैय्यारी कर रहे हैं आप भी चलेंगे कि नहीं ?

धर्मप्रकाश—(कुछ गम्भीर हो कर) भाई चन्द्रप्रकाश जी यह सूर्य ग्रहण क्या चीज है और इसका क्या महत्त्व कुछ हमें भी तो बतलाइये।

चन्द्रप्रकाश—लो और देखो अब लगे दूसरों को बनाने। ऐसी बातें करते हैं जैसे कुछ जानते ही न हों।

धर्मप्रकाश—नहीं भाई इसमें बनाने की क्या बात है ? आखिर मनुष्य अल्पज्ञ है, हर बात को थोड़े ही जानता है। मैं वास्तव में ही जानना चाहता हूँ कि सूर्य ग्रहण की वास्तविकता क्या है जिसके कारण सूर्य ग्रहण इतना महत्व रखता है।

चन्द्रप्रकाश—भाई साहिब मुझे और तो ज्यादा मालूम नहीं पर हां जो पण्डित जी इस बारे में कथा सुनाते हैं, जिसको मैंने कई बार सुना है, और वह पुराणों में लिखी बतलाते हैं वह जानता हूँ।

धर्मप्रकाश—हां हां ठीक है जो आप जानते हैं वही कथा जानना चाहता हूँ कृपा करके सुनाइये तो ?

चन्द्रप्रकाश—पुराणों में लिखा है देवताओं ने समुद्र का मन्थन किया। उससे चौदह रत्न निकले। उन रत्नों में से एक रत्न "अमृत" था उसे प्राप्त कर विष्णु जी ने देवताओं को बुलाया और कहने लगे कि जो इस अमृत को पियेगा वह कभी नहीं मरेगा। अतः आओ इस अमृत का पान करो। इससे तुम अमर हो जाओगे। इतना कह कर वह मोहनी का रूप धारण कर अमृत को बांटने लगे। जिस समय विष्णु अमृत बांट रहे थे उसी समय "राहु" नाम का एक राक्षस देवताओं का वेष धारण करके उनकी पंक्ति में आ बैठा। जब विष्णु भगवान ने वह अमृत सब को दिया, तो पंक्ति में बैठे राहु को भी दे दिया उसे लेकर वह तत्काल ही पी गया। परन्तु सूर्य और चन्द्रमा ने चुगली खायी, और विष्णु भगवान से बोले—आपने यह क्या गजब कर दिया, कि एक राक्षस को अमृत दे दिया, विष्णु को बड़ा क्रोध आया और उसने अपने तेज चक्र से राहु का सिर काट दिया, परन्तु वह अमृत पी चुका था, इसलिये सिर काटने से भी नहीं मरा, परन्तु उसकी शक्ति बढ़ गई और वह एक से दो हो गया, पहले तो अकेला राहु था, अब दूसरा केतु भी पैदा हो गया, और राहु, बड़े गर्व से कहने लगा अच्छा सूर्य, चन्द्र ने मेरी चुगली खाई है इसका बदला लूंगा। इस कारण से जब उसे मौका मिलता है, वह

सूर्य और चन्द्र को ग्रस लेता है। तब लोग पुण्य तथा दान करते हैं जिससे इन देवताओं का छुटकारा होता है।

धर्मप्रकाश—वाह भाई, खूब गप्प उड़ाई, स्वयं विचार करो यह बात कभी सच्ची हो सकती है। क्योंकि प्रथम तो यह भगवान विष्णु ही कैसा भगवान् था जिसको इतना भी पता नहीं चला कि यह देवता का रूप बना कर राक्षस बैठा है, जिस बात को सूर्य और चन्द्र जान गये उसको बेचारा भगवान न जान पाया।

(२) दूसरे यह सूर्य चन्द्र आदि तो सब जड़ वस्तुएं हैं उनमें ऐसी ईर्षा, द्वेष की बातें करना कैसे घट सकता है ?

(३) तीसरे यह बात साईंस यानी विज्ञान और बुद्धि के सर्वथा विरुद्ध है आज के युग में कौन बुद्धिमान इस बात पर विश्वास करेगा ?

(४) चौथे आपने दान से उनके छुटकारे की बात भी खूब कही। जरा सब पौराणिकों को कह दीजिये कि उस वक्त कोई दान-पुण्य न करे। देखते हैं कि ग्रहण हटता है कि नहीं यदि न हटे तब तो आपकी बात सच्ची, वरना मानना पड़ेगा कि यह गप्प के सिवाय कुछ नहीं।

चन्द्रप्रकाश—अच्छा जी यदि आपकी बात मान लें कि उपरोक्त बात झूठ और गप्प है तो आप ही बतलाइये कि सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण कैसे लगता है।

धर्मप्रकाश—सुनो भाई मैं आपको असली बात बतलाता हूं कि जिसको हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने बड़े विस्तार के साथ अपने ग्रन्थों में लिखा है और जिसको आज के बड़े २ वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं, और जिससे कोई भी बुद्धिमान इन्कार नहीं कर सकता।

चन्द्रप्रकाश—हां भाई कृपा करके अवश्य बतलाइये। मैं भी इस रहस्य को जरूर जानना चाहता हूं, कि वास्तविकता क्या है ?

धर्मप्रकाश—अच्छा जरा ध्यान से सुनिये, बहुत शीघ्र यह बात आपकी समझ में आ जायगी।

सूर्य अपनी धुरी पर घूमता है, पृथिवी सूर्य की परिक्रमा करती है। इसी प्रकार चन्द्रमा पृथिवी की परिक्रमा करता है। सूर्य, चन्द्र और पृथिवी जब घूमते हुए तीनों एक सीध में आ जाते हैं। तब ग्रहण पड़ता है। यदि पृथिवी और चन्द्र की कक्षा एक ही धरातल में होती तो हर मास एक सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण होता। क्योंकि प्रत्येक पूर्णमासी को सूर्य और चन्द्र के बीच में पृथिवी आ जाती, इसलिये चन्द्र ग्रहण पड़ता और प्रत्येक अमावस्या को पृथिवी सूर्य के बीच में चन्द्रमा आ जाने से सूर्य ग्रहण पड़ता, परन्तु दोनों कक्षाओं के एक धरातल में न होने से ऐसा नहीं होता। इससे स्पष्ट हो गया कि "ग्रहण" सूर्य, चन्द्र और पृथिवी इन तीनों की गति से उत्पन्न होता है कि राहु केतु के पकड़ लेने से। इसमें शास्त्र का प्रमाण भी लीजिये। यथा—

छादयति शशी सूर्यं शशिनं च महती भूच्छाया।

(आर्य भट्टीये)

सूर्य ग्रहण में चन्द्रमा सूर्य को ढक लेता है और चन्द्र ग्रहण में पृथिवी की छाया चन्द्रमा को ढक लेती है। सूर्य सिद्धान्त में भी ऐसा ही लिखा है।

छादको भास्करस्येन्दुरधः स्थो घनवत् भवेत्।
भूच्छायां प्राङ्मुखश्चन्द्रो विशत्यस्य भवेदसौ॥

बादल के समान चन्द्रमा जब सूर्य को ढक लेता है, तो "सूर्य ग्रहण" और पूर्व की तरफ जाता हुआ चांद जब पृथिवी की छाया के नीचे आ जाता है। तब "चन्द्र ग्रहण" कहा जाता है।

चन्द्रप्रकाश—अच्छा भाई यह तो मैं समझ गया हूँ कि चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है और जब घूमती हुई पृथिवी सूर्य और चन्द्र के बीच में आ जाती है और सूर्य का प्रकाश रुक जाता है तो यही चन्द्र ग्रहण कहलाता है। ज्यों २ चन्द्रमा सूर्य और पृथिवी की सीध से निकलता जाता है त्यों २ उसमें सूर्य की किरणें पड़ने लगती हैं इसी को चन्द्रमा का मोक्ष या ग्रह से छूटना कहते हैं और जब पृथिवी और सूर्य के बीच में

चन्द्रमा आ जाता है तब सूर्य चन्द्रमा की ओट में आ जाता है। उतना भाग पृथक् होता सा प्रतीत होने लगता है। इसी को सूर्य ग्रहण कहते हैं। परन्तु प्रिय भ्राता जी एक बात मैं और आपसे पूछना चाहता हूं कि यह जो लोग कहते हैं कि सूर्य दर्शन से पुण्य और इसकी पूजा से बड़े लाभ होते हैं, क्या यह भी गलत है ? पापों का नाश होता है क्या यह बात भी झूठ है।

धर्मप्रकाश—हां भाई जिस प्रकार पौराणिक भाई सूर्य पूजा बतलाते हैं वह तो पुण्य नहीं उलटा पाप का कारण है क्योंकि यह जड़ पूजा है और जड़ पूजा का तो वेद, शास्त्र और पुराणों में भी स्थान २ पर खण्डन भरा पड़ा है। उदाहरणार्थ एक-दो श्लोक सुनिये—भागवत स्कन्ध १० अ० ८४ श्लोक १३ में लिखा है।

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके, स्वधी कलत्रादिषु भौम इज्यधीः।
यत्तीर्थ बुद्धि सलिलेन कर्हिचित्, जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः॥

अर्थात् जो वात, पित्त, कफ के शरीर में आत्मा बुद्धि रखता है। जो पुत्र कलत्रादि को मोह के कारण अपना समझता है। जो सोने, चान्दी, मिट्टी की बनी मूर्तियों की पूजा करता है, जो बहते हुए जलों या नदियों को तीर्थ समझता है वह बैल और गधे के समान है। अगले दो श्लोकों में लिखा कि—

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरु कालेन दर्शनादेव साधवः॥

जल स्थलमय तीर्थ तथा मिट्टी, पत्थर की बनी मूर्तियां चिरकाल में भी मनुष्य को पवित्र नहीं करते परन्तु सत्पुरुष क्षण में ही मनुष्यों को पवित्र करने वाले हैं।

नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्र तारका। न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः
उपासिता भेदकृतो हरन्त्यघं विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्त सेवया॥

भागवत १०।८४।१२

अग्नि, सूर्य, चांद, तारे, भूमि, जल, आकाश, वायु आदि में से कोई भी उपासना किया हुआ पाप को हरने वाला नहीं अपितु विद्वान् पुरुष ही सेवा द्वारा पाप से बचाने वाले हैं।

चन्द्र०—क्या यह भागवत में लिखा है या मनमाने श्लोक सुना रहे हो।

धर्म०—हां यह सब श्लोक भागवत् के ही हैं विश्वास न हो तो पुस्तक मंगवा कर देख लो निश्चय हो जायगा।

चन्द्र०—अच्छा यह तो ठीक परन्तु सूर्य की पूजा तो वेद में भी लिखी है ऐसा सनातनी पण्डित बतलाते हैं।

धर्म०—नहीं भाई वेद में कहीं सूर्य की पूजा नहीं लिखी परन्तु इसके विपरीत पुराणों में भी सूर्य पूजा करने वालों की बड़ी निन्दा की गई है।

चन्द्र०—तो क्या सनातनी पण्डित गलत कहते हैं कि वेदों में सूर्य की पूजाका वर्णन है, कुछ दिन हुए पंडितजी 'यो देवेभ्यो आतपति' आदि वेद-मन्त्र सुनाकर बतला रहे थे, कि इस मन्त्र में ब्रह्म के अवयवरूप सूर्य की प्रशंसा कर उसको प्रणाम करना बतलाया है। इत्यादि क्या यह ठीक नहीं?

धर्म०—यह बात उनकी सर्वथा अशुद्ध और वेद के विपरीत है। इन भाइयों को एक पुराना रोग है कि जहां कहीं "नमः" शब्द आता है उसका अर्थ नमस्कार या प्रणाम करके हर वस्तु की पूजा निकालने लगते हैं, हालांकि "नमः" शब्द के अन्न, वज्र, परिचरण आदि कई अर्थ हैं। यदि उनकी ही बातें मान लें तो

तस्कराणां पतये नमः॥ यजुः १६।२१ "श्वनिभ्योनमः" यजुः १६।२४

इन वेद मन्त्रोंसे चोरों, डाकूओं और भंगियों की पूजा भी सिद्ध होगी जो सर्वथा बुद्धि विरुद्ध है। इसलिये "नमः" का अर्थ सर्वत्र प्रणाम या पूजा ठीक नहीं असली मन्त्र, और उसका ठीक अर्थ यह है :—

"यो देवेभ्यो आतपति यो देवानां पुरोहितः
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये॥" यजु० ३१।२०

अर्थात् हे मनुष्यो ! जो सूर्य लोक उत्तम गुणों वाले पृथिवी आदि के अर्थ अच्छे प्रकार तपता है। जो पृथिवी आदि लोकों के प्रथम से हितार्थ बीच में स्थित किया गया है। जो पृथिवी आदि से पूर्व उत्पन्न किया गया, रुचि कराने वाले परमेश्वर के सन्तान के तुल्य उस सूर्य से अन्न उत्पन्न होता है। अर्थात् ऐ मनुष्यो ! जिस परमेश्वर ने सब के हित के लिये अन्न आदि की उत्पत्ति के निमित्त सूर्य को बनाया है उसी जगदीश्वर की उपासना करो।

चन्द्र०—ठीक है, बात तो आपकी ही सत्य मालूम पड़ती है परन्तु जो लोग कहते हैं कि सूर्य देव है, देवों की पूजा करना धर्म है, क्या यह भी सत्य नहीं ?

धर्म०—नहीं भाई यह बात भी भ्रान्ति के कारण है। और अज्ञान के कारण लोग इसको भी ठीक नहीं समझते। क्योंकि हमारे शास्त्रों में लिखा है--देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा' कि देवता वह है जो कुछ देता है, चमकता है, और दूसरों को चमकाता है। इससे पता चला कि देवता वह है जो कुछ देवे। वह देवता भी दो प्रकार के हैं एक जड़ देवता और दूसरे चेतन-देवता, जैसे माता पिता, गुरु, अतिथि, पति के लिये पत्नी और पत्नी के लिये पति, ये चेतन देवता हैं। और सूर्य, चन्द्र, जल, वायु आदि सब जड़-देवता हैं, चेतन देवताओं का आदर, मान, सत्कार और प्रत्येक प्रकार सेवा करके उनके आशीर्वाद प्राप्त करना और जड़ देवताओं के गुणों को जानकर उनसे ठीक २ उपयोग लेना ही वास्तव में देव पूजा है। इसके विपरीत अदेव पूजा है। ऐसे ही सूर्य भी देव है किन्तु उसकी पूजा यही है कि हम सूर्य के गुणदोषों को जानकर उनसे ठीक २ उपयोग या लाभ लें। जैसे तत्वज्ञों ने बतलाया है कि :—

(१) सूर्य जीवन शक्ति का भण्डार है और प्राण शक्ति का आधार है इसलिये संस्कृत साहित्य में सूर्य को प्राण कहा गया है।

(२) सूर्य आयुवृ'द्धि का कारण है।

(३) सूर्य अपनी किरणों द्वारा सब प्रकार के रोगों का नाश करने वाला है

(४) यह ठण्ड को दूर करने वाला है, शीतकाल में मनुष्य पशु-पक्षी सभी शीत निवारण के लिये सूर्य के ताप की शरण लेते हैं।

(५) सूर्य की किरणें जल को हरण करने वाली हैं इसलिये उन्हें वेद में "हरि" नाम से पुकारा गया है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि जब हम गीले कपड़े धूप में डालते हैं तो वह सूख जाते हैं।

(६) सूर्य वृष्टिकर्त्ता है, यह समुद्र से जल ऊपर लेजाकर मेघ रूप में परिवर्तित करता है और फिर वृष्टि रूप में गिरा कर संसार का कल्याण करता है।

(७) सूर्य से ही हमारी खेतियां पकती हैं।

(८) सूर्य के कारण ही कई प्रकार की ऋतुओं का प्रादुर्भाव होता है।

(९) यह जठराग्नि और पाचनशक्ति का दाता है।

(१०) सूर्य अपने सप्त प्रकार की रंगदार किरणों से संसार में सुन्दरता तथा नाना प्रकार के रूप निर्माण करता है। जिससे सबको अनेकों लाभ होते हैं, ऐसे और भी अनेकों गुण सूर्य में हैं, उन सब गुणों को जानना और कार्यरूप में उनसे लाभ उठाना ही वास्तव में सूर्य पूजा है। इसीलिये वेद में कहा गया है कि "सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते" कि मैं सूर्य का अनुकरण करने वाला बनूं तथा "अहं भूयासं सवितेव चारु" सूर्य के गुणों का धारण करके मैं सूर्य के समान सुन्दर वा चमकीला बनूं॥

इसके विपरीत सूर्य के सामने हाथ जोड़ना वा जल चढ़ाना आदि ठीक नहीं क्योंकि यह जड़पूजा है अतः पाप है, इसलिये पुराणों में भी सूर्य पूजकों की बड़ी निन्दा की गई।

चन्द्र०—पुराणों में सूर्य की पूजा करने वालों की निन्दा की बात भी आपने खूब कही यह तो आज ही सुना है। भला कहां निन्दा की गई है?

धर्म०—अच्छा यदि सुनना ही चाहते हो तो सुनो—

(१) क्लिश्यन्ति तेऽपि मुनयस्तव दुर्विभाव्यम ।
पादाम्बुजं न हि भजन्ति विमूढ चित्ताः ॥
सूर्याग्नि सेवन पराः परमार्थ तत्त्वम् ।
ज्ञातं न तैः श्रुति शतैरपि वेदसारम् ॥

(२) तीर्थेषु पशु यज्ञेषु काष्ठ पाषाण मृण्मये ।
प्रतिमादौ मनो येषां ते नराः मूढ़ चेतसः ॥
मृच्छिला धातु दार्वा दे मूर्त्तावीश्वर बुद्धयः ।
क्लिश्यन्ति तमसा मूढ़ा परां शान्तिं न यान्ति ते ॥

(३) ज्ञात्वा सुरांस्तव वशान सुरार्दितांश्च ।
ये वै भजन्ति भुवि भावयुता विभग्नान् ॥
धृत्वा करे सुविपुलं खलु दीपकं ते ।
कूपे पतन्ति मनुजा विजले ऽतिघोरे ॥

(४) ये वै स्तुवन्ति मनुजा अमरान् विमूढ़ाः ।
माया गुणैस्तव चतुर्मुख विष्णु रुद्रान् ॥
शुभ्रांशु वह्नि यम वायु गणेश मुख्यान् ।
किं त्वामृते जननि ते प्रभवन्ति कार्ये ॥

ये सब श्लोक देवी भागवत पुराण के हैं।

पहले श्लोक में बताया गया है कि जो सूर्य अग्नि आदि की सेवा में लगे हैं वह मूढ अर्थात् महामूर्ख हैं और उन्होंने वेद के सार को नहीं जाना।

दूसरे श्लोक में बतलाया गया है कि जो मूढ मनुष्य, तीर्थों में, पशु यज्ञों में, काठ पत्थर और मिट्टी की मूर्तियों में मन लगाते, मिट्टी धातु और दारु आदि मूर्तियों में ईश्वरबुद्धि रखते हैं वह सदैव क्लेश पाते हैं और कभी शान्ति को प्राप्त नहीं होते।

तीसरे श्लोक में कहा कि जो जड़ वस्तुओं की पूजा करते हैं। देवी को छोड़ कर अन्य देवताओं की पूजा करते हैं वह जान बूझ कर घोर अन्ध कूप में गिरते हैं।

चौथे श्लोक में बतलाया गया है कि जो अज्ञानी मनुष्य ब्रह्मा विष्णु रुद्रादि देवों की स्तुति करते हैं तथा जो सूर्य, अग्नि, यम, वायु, गणेश की पूजा करते हैं वह किसी कार्य में कभी सफल नहीं होते ॥ कहिये महाराज बस, या कुछ और सुनना चाहते हैं।

चन्द्र प्रकाश—बस महाराज बस, आपने आज मेरी आंखें खोल दी हैं मैं सूर्य ग्रहण और सूर्य पूजा के विषय में अच्छी प्रकार समझ गया हूं। अब कृपया यह बतलाइये सूर्य ग्रहण के बारे में कोई नया समाचार भी पढ़ा है।

धर्म०—हां जी आज के प्रताप पत्र में एक आवश्यक सूचना दी गई है कि लखनऊ के एक विद्वान् जो कि नेत्र विद्या में बड़े निपुण समझे जाते हैं, ने अपने वक्तव्य में साधारण जनता को चेतावनी दी है कि यदि उन्होंने २० जून को सूर्यग्रहण के वक्त सूर्य को ध्यान से देखने की कोशिश की तो उनकी आंखें झुलस सकती है और सदैव के लिये दृष्टि के मन्द हो जाने का भी डर है। ये चेतावनी आल इण्डिया रेडियो लखनऊ से दी गई है। आपने सरकार से अपील की है कि गांव २ में सब को यह सन्देश दे दिया जावे कि वह सूर्य ग्रहण के समय उसे खुली आंख से देखने या पानी में ग्रहण का प्रतिबिम्ब देखने का प्रयत्न न करें, अगर देखना ही चाहें तो गहरे रंग का चश्मा यानी नयनक प्रयोग में लावें। गर्भवती औरतों को भी सूर्य ग्रहण देखने का निषेध किया गया है। यह बात मैंने आपको इसलिए सुनाई हैं कि कहीं ऐसा न हो कि सूर्य के पुजारी सूर्य ग्रहण के मेले पर सूर्य की पूजा करते २ आंखों से ही हाथ धो बैठें।

चन्द्र ०—कई लोगों का विचार है कि सूर्य ग्रहण अथवा चन्द्र ग्रहण के समय घर से बाहर नहीं निकलना चाहिए। कोई काम न करना चाहिए खाना

पीना भी नहीं चाहिए क्योंकि उस समय सारे पदार्थ अशुद्ध हो जाते हैं। और नहा धोकर घर में प्रवेश करना चाहिये इस बारे में आप का क्या विचार है।

धर्म०—यह सब अज्ञान और भ्रम है, सिवाय कुछ अज्ञानी हिन्दुओं के ईसाई, मुसलमान, सिक्ख, यहूदी, पारसी कोई भी इस बात पर विश्वास नहीं करता॥

चन्द्र०—इसके लिये आपका बड़ा धन्यवाद किन्तु यह तो बताइये कि सूर्य ग्रहण की पूजा के लिये न सही तीर्थ दर्शन की भावना से जाने में तो कोई हर्ज नहीं।

धर्म ०—नये स्थानों की सैर और भ्रमण की भावना से जाने में तो ज्यादा हरज नहीं किन्तु इन जल स्थलमय स्थानों का तीर्थ समझना भारी भूल है।

चन्द्र०—यह कैसे ?

धर्म०—श्री महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज कहते हैं जो जल स्थल मय है, वह तीर्थ कभी नहीं हो सकते क्योंकि "जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि" मनुष्य जिन करके दुख से तरें उनका नाम तीर्थ है। जल थल तराने वाले नहीं किन्तु डुबा कर मारने वाले हैं। प्रत्युत नौका आदि का नाम तीर्थ हो सकता है। क्योंकि इनसे भी समुद्र आदि को तरते हैं। इसी प्रकार महर्षि ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में लिखते हैं। कि जल वा स्थल तारने वाले कभी नहीं हो सकते किस लिये कि जो जल में हाथ वा पग न चलावें वा नौका आदि पर न बैठे तो कभी नहीं तर सकते इस युक्ति से भी काशी, प्रयाग, गंगा, यमुना समुद्रादि तीर्थ सिद्ध नहीं हो सकते इस कारण से सत्य शास्त्रोक्त जो तीर्थ हैं उन्हीं को मानना चाहिये, जल और स्थल विशेष का नहीं।

चन्द्र०—अच्छा तो सच्चे तीर्थ कौनसे हैं।

धर्म०—तीर्थ दो प्रकार के होते हैं। एक तो वह जिस करके मनुष्य नदी और समुद्रादि के पार आते जाते हैं। जैसे नौका और [illegible]

है जिन की सहायता से मनुष्य दुखसागर से पार होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं जैसे कि वेदादि सत्य शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का संग, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास निर्वैर निष्कपट, सत्य भाषण, सत्य का मानना, सत्य करना, ब्रह्मचर्य सेवन आचार्य, अतिथि माता पिता की सेवा, परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना, शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्मयुक्त पुरुषार्थ, ज्ञान विज्ञान आदि शुभ गुण कर्म आदि (सत्यार्थप्रकाश से उद्धृत)
एक दूसरे महात्मा ने कहा है।

सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थं मिन्द्रिय निग्रहः।
सर्वभूत दया तीर्थं सर्वत्रार्जवमेव च
दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोष तीर्थ मुच्यते
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रिय वादिता
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं पुण्यं तीर्थं मुदाहृतम्
तीर्थाणामपि सततं विशुद्धि मनसः परा॥

सत्य, क्षमा, इन्द्रिय निग्रह, दया, दान, दम, सन्तोष ब्रह्मचर्य, ज्ञान, धृतिः, पुण्य, मन का शुद्ध करना, आदि ही सच्चे तीर्थ हैं। दूसरे स्थान पर कहा गया है—

मनो विशुद्धं पुरतस्तु तीर्थं वाचा यमस्त्विन्द्रिय निग्रहस्तपः।
एतानि तीर्थानि शरीर जानि स्वर्गस्य मार्गं प्रतिवेदयन्ति॥

मन की पवित्रता सत्य और विषयों को वश में रखना मनुष्य के तीर्थ हैं और यही सुख के दाता हैं। एक कवि ने इस प्रकार लिखा है।

तीर्थ ज्ञान क्षमा मन धरहीं, तीर्थ निज इन्द्रिय वश करहीं
ब्रह्मचर्य कोमल मन माया, तीर्थ सब भूतों में दाया
तीर्थ दोष रहित वैरागू, निज तीर्थ हिंसा को त्यागू
बड़ तीर्थ इन्द्रियन सों शुद्ध, निश्चय तीर्थ ज्ञान मन शुद्ध
इन्द्रिय वश, निर्मल मन जहां, सब तीर्थ घट में ही तहां

तीर्थ ज्ञान ध्यान भल होई, तब ही नर पावै सुख सोई
ज्ञान क्षमा तीर्थ मन लावे, तब ये जीव परमपद पावे ॥

चन्द्र०—अच्छा मित्रवर कई लोगों का विचार है कि गंगा यमुना कुरुक्षेत्रादि स्थानों की यात्रा से पाप छूट जाते हैं इस विषय में आपके क्या विचार हैं।

धर्म०—भाई यह बात नितान्त अशुद्ध है यदि नदियों में नहाने और गंगा यमुना, कुरुक्षेत्र आदि में जाने से पाप छूट जाते तो दरिद्रों को धन, राजपाट, अन्धों को आंख मिल जाती, कोढ़ियों का कोढ़ आदि रोग छूट जाता (परन्तु) ऐसा होता नहीं इसलिये पाप वा पुण्य किसी का नहीं छूटता। और न ही ईश्वर दर्शन होते हैं। किसी ने ठीक कहा है—

नहाय धोये हरि मिलें तो मेंढक मच्छियां।
दूध पिये हरि मिले तो बालक बच्छियां॥
तिलक लगाय हरि मिले तो हस्ती हस्तियां।
मुण्ड मुण्डाय हरि मिले तो भेड़ बस्तियां॥

इसलिये शास्त्र पुकार २ कर कहते हैं कि—"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्" अर्थात् अपने किये हुए शुभ अशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भुगतना पड़ेगा इसमें रत्ती भर भी न्यूनता अधिकता नहीं हो सकती। और यदि नहाने धोने और जगह २ फिरने से पाप छूट जाते या मुक्ति मिल जाती तो फिर वेदों के इन उपदेशों की यथा वेदादि विद्या पढ़ो, ब्रह्मचर्य व्रत धारण करो, धर्मानुसार धन कमाओ, सत्पुरुषों का संग करो, सत्पुरुषों को दान दो यम नियम का पालन करो, योग में चित्त लगाओ इत्यादि की क्या जरूरत थी।

दूसरे यदि नहाने एवं भ्रमण करने आदि कर्मों से ही पाप से छुटकारा और मुक्ति की प्राप्ति हो जाती हो तो "ऋतेज्ञानान्न मुक्ति" इत्यादि शास्त्र वाक्य तो अपने आप ही मिथ्या सिद्ध हो जायेंगे॥

चन्द्र०—यदि यह बात है तो सहस्रों, लाखों मनुष्य वहां मेलों पर तीर्थ यात्रा को क्यों जाते हैं॥

धर्म०—जितने लोग वहां जाते हैं वह सारे पाप छुड़ाने वा मुक्ति पाने की इच्छा से ही वहां नहीं जाते और न ही वह उन स्थानों को पुण्यक्षेत्र या पवित्र स्थान ही समझते हैं, प्रत्युत इनमें से कुछ व्यापारी, कुछ भिखारी, कुछ रोजगारी, कुछ जुआरी, कुछ व्यभिचारी, कुछ धर्म प्रचारी। जैसे (आर्य) कुछ मत प्रचारी जैन ईसाई, कुछ प्रबन्ध कारी, कुछ चोर कुछ जार, कुछ उठाईगीरे, कुछ लुटेरे, कुछ गठकटे, कुछ कौतक कारक, कुछ कौतुक दर्शक होते हैं। शेष जो इन स्थानों को तीर्थ समझ कर जाते हैं उनमें थोड़े से पढ़े लिखे परन्तु वह भी सत्यासत्य के निर्णय से कोरे पक्षपाती और हठीले होते हैं बाकी सब अनपढ़, मूर्ख और आंख बन्द करके बिना हानि लाभ विचारे एक दूसरे का अन्धा अनुकरण करने वाले होते हैं। इसी कारण किसी ने इस अवस्था का वर्णन करते हुए लिखा है।

तीर्थ स्थल पर्वन पै, देव स्थल सर्वन पै, आयआयजुटै लोग लालची लफंगा है। जा सों कछु पावें ताके गुण गण गावें, सदा जासों नहीं पावें तासों ठानते मृदंगा है।

भिक्षुक गरीबन को बढ़ने न देत आगे, भीड़ में घुसेड़ हाथ मांगता दबंगा है। 'देवजू' गणेश को सौं भूल कै न जैयै तहां, जो है मन चंगा तो कठौती मांहि गंगा है॥

इससे स्पष्ट मालूम होता है कि तीर्थों पर जाने वाले अकसर लोग लालची मूर्ख और निकम्मे ही होते हैं।

चन्द्र०—आप का बहुत २ धन्यवाद। आज आप ने वास्तव में मुझे शास्त्रों के प्रमाणों युक्तियों द्वारा सच्चे और सीधे रास्ते का ज्ञान कराकर मेरा कल्याण कर दिया है। अब मैं सत्यासत्य को जान गया हूँ। और अब मैंने कुरुक्षेत्र के मेले पर जाने का विचार स्थगित कर दिया है अच्छा नमस्ते, पुनः दर्शन करेंगे।

इति शम्